

यह इष्टोपदेश, पूज्यपादस्वामी कृत है। सातवीं गाथा चलती है। पहले आ गया, देखो! मोहनीयकर्म के उदय से-आया है न? उसका दृष्टान्त देते हैं। मोहनीयकर्म में क्या कहा? आत्मा (का) अपना स्वभाव शुद्ध और आनन्द है, तथापि मोहकर्म के उदय के आधीन हुआ आत्मा अपने और पर के असाधारण भिन्न स्वभाव को जान नहीं सकता। समझ में आया? नशे में चढ़े हुआ प्राणी स्त्री को माँ कहे और माँ को स्त्री कहे। नशा नहीं करते? शराब, शराब पीनेवाले को पता नहीं कि यह मेरी माँ है। स्त्री के, बहिन, पुत्री के, माँ के और सबके वस्त्र समान देखे तो बहिन को स्त्री कह दे, स्त्री को बहिन कह दे और स्त्री को माँ कह दे। वास्तविक उस स्त्री का स्वभाव माँ का, स्त्री का, पुत्री का कौन है, उसे वह अलग नहीं कर सकता।

इसी प्रकार आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप का लक्षण आनन्द और ज्ञान होने पर भी, मोह के आधीन हुई दशा, वह अपना ज्ञान-आनन्दस्वभाव असाधारण है, वह राग में, विकार में, शरीर में वह स्वभाव नहीं है - ऐसा वह अलग नहीं कर सकता। समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि के कारण; मोहकर्म तो निमित्त है, उसका उसमें उदय है, उसके आधीन हुआ अनादि का आत्मा अपना ज्ञान और आनन्द, वह उसका स्वभाव है, (उसे नहीं जानता) असाधारण अर्थात् वह स्वभाव अन्यत्र नहीं हो सकता। जानना, जानना यह इसका स्वभाव है और अतीन्द्रिय आनन्द इसमें स्वभाव है - ऐसा मिथ्यादृष्टि, कर्म के निमित्त में आधीन हुआ, अपना स्वभाव जो असाधारण दूसरे में नहीं, ऐसे स्वभाव को दूसरे पदार्थ से भिन्न करके स्वयं को पहचान नहीं सकता। कहो, समझ में आया इसमें ?

इसी प्रकार राग और द्वेष, पुण्य और पाप के मलिनभाव, वह असाधारण, उनका स्वभाव दुःखरूप है। समझ में आया ? शुभ और अशुभराग का दुःख लक्षण, दुःखस्वरूप है, वह उसका असाधारण अर्थात् उनका दुःखरूप स्वभाव धर्म है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है। गुलाबरायजी ! टाइप में लिखा हो, अभी तो सब पूरा अलग प्रकार का आता है। यह सम्यक् टाइप है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा वस्तु है न! उसका मूल स्वभाव तो ज्ञान है, जानना वह है। राग करना या शरीर आदि मेरे (हैं), ऐसा मानना, वह उसका स्वभाव है ? समझ में आया ? और शरीर तथा विकार का वह स्वभाव है कि आत्मा में सुखरूप हो और ज्ञान करे ? समझ में आया ? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने केवलज्ञान से इस आत्मा को ज्ञानस्वभावी देखा और पुण्य-पाप को दुःखस्वभावी देखा तथा शरीर को परभावी देखा; पर / पृथक्भावरूप से देखा। उसे अज्ञानी मिथ्यात्व के वश हुआ, अपना ज्ञानस्वभाव आनन्द भिन्न है, ऐसा पृथक् नहीं कर सकता। विकार के भाव दुःखरूप हैं, उन्हें असाधारण ऐसा जो स्वभाव है, मेरा नहीं, ऐसा वह मिथ्याज्ञानी अनादि से उस भाव को पृथक् नहीं कर सकता।

शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब अत्यन्त पर है परन्तु मिथ्याभ्रम के कारण अज्ञानी मूढ़ जीव मोह में वश हुआ, स्वभाव का आधीनपना छोड़कर, वे मेरे हैं, मुझे व्यवस्था देनेवाले हैं, वे मेरी सुविधा, सेवा मुझे सुखरूप हैं, ऐसा मूढ़ जीव मिथ्यात्वभाव में, जो

जिसका स्वभाव ऐसा नहीं, स्वयं को सुख दे, ऐसा उनका स्वभाव नहीं। समझ में आया ? बसन्तलालजी ! आहा...हा... ! शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, मकान जो परवस्तु है, उनका स्वभाव आत्मा को ज्ञान करावे या सुख दे, ऐसा उनका स्वभाव नहीं है, तथापि अज्ञानी मिथ्यात्व मूढ़पने के कारण मोहरूप से मोह में वश हुआ वे स्वभाव मुझे सुखरूप हैं, पुण्य-पाप के भाव दुःखरूप, वे मुझे सुखरूप हैं और आत्मा आनन्द और ज्ञानरूप है, उसका उसे भान नहीं है।

देखो ! यह इष्टोपदेश ! यह तो अनादि का इसे नशा चढ़ा है, यह तो उसका दृष्टान्त है। क्षण-क्षण में नया कर्ता है या नहीं ? पागल, पागल हो गया है, कहते हैं। पागल ! तेरा कौन और पर कौन ? विभाव कौन, स्वभाव कौन ? और संयोग कौन ? ऐसा आचार्य कहते हैं। समझ में आया ? इसमें आया था न ? क्या भाई हमारे साहित्यकार कल बोले थे न, 'मोहेन संवृतं ज्ञानं, ज्ञानं संवृतं मोहेन।' समझ में आया ?

किन्तु जिसने ज्ञान द्वारा आत्मा को जाना है और मोहवश नहीं हुआ, वह आत्मा में ज्ञान और आनन्द मेरा और मुझमें है, ऐसा मानता है। ये पुण्य-पाप के भाव मुझे दुःखरूप हैं, सुखरूप नहीं। शरीर, वाणी, परपदार्थ मुझे सुविधा देनेवाले अर्थात् सुख देनेवाले बिल्कुल नहीं हैं, वैसे ही परपदार्थ मुझे दुःख देनेवाले बिल्कुल नहीं हैं। इस प्रकार ज्ञान से जिसने आत्मा को मोह से पृथक् करके जाना है, वह सम्यक्ज्ञानी अपना आनन्द और ज्ञान आत्मा में जानता है; पुण्य-पाप में वह आनन्द और ज्ञान नहीं जानता और परपदार्थ मुझे सुविधा या असुविधा दें, ऐसा उनका स्वभाव है, ऐसा वह नहीं जानता। प्रेमचन्दजी ! ओहोहो ! समझ में आया ? कहो, मोहनभाई ! मोहनभाई के सामने नजर गयी इसमें।

असाधारण भाव (धर्म) के द्वारा किसी खास पदार्थ को अन्य पदार्थों से जुदा जान सके, उसी धर्म को उस पदार्थ का स्वभाव कहते हैं। आया न कल ? भाई ! इसका महासिद्धान्त रखा है। इष्टोपदेश इसका नाम है, हितकर उपदेश इसका नाम है। आत्मा को ज्ञान और आनन्द के लक्षण से आत्मा को पहचानना, वह इष्ट-हितकर है और इस आत्मा के असाधारण स्वभाव को न पहचानकर, विकारीभाव और पर मुझे सुख-दुख देनेवाले अथवा पुण्य-पाप मुझे सुखरूप हैं, परवस्तु मुझे अनुकूल-प्रतिकूल है, ऐसा

मानना अहितकर है। यह इष्टोपदेश ऐसा बताता है। समझ में आया? इसलिए कोई परपदार्थ मुझे हितकर है या अहितकर है, यह वस्तु का स्वरूप नहीं है और पुण्य-पाप के भाव मुझे सुखरूप हैं, ऐसा पुण्य-पाप के भाव का स्वभाव नहीं है और आत्मा दुःखरूप है या आत्मा ज्ञाता के अतिरिक्त दुःखरूप को परिणमे, ऐसा उसका स्वभाव है - ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है। समझ में आया?

ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है-... दृष्टान्त देते हैं। 'मल सहित मणि का प्रकाश (तेज)... मणि है मणि ऊँची, लाख-दो लाख की ऊँची मणि आती है न? तेजवाली तेज, जैसे एक प्रकार से न होकर.. मणि का प्रकाश वास्तविक स्वभाव को एकरूप है। मणि का स्वरूप तो प्रकाशरूप एक है परन्तु एकरूप भासित नहीं होता। क्यों? अनेक प्रकार से होता है,.. प्रकाश (तेज) जैसे एक प्रकार से न होकर अनेक प्रकार से होता है,.. 'मल सहित' यह शब्द है। क्या कहा? है न पहला शब्द? जो मणि है, स्फटिकमणि ऊँची (कीमती) होती है न? वह मलसहित होने से उसकी एकरूपता की प्रकाशता उसमें दिखाई नहीं देती। मल के कारण उसमें अनेकरूपता-मल की विविधता दिखाई देती है। समझ में आया? मलसहित, मलसहित मणि। दो-दो 'म म' आये। तुम्हारे साहित्यकार... मलसहित मणि, ऐसा आया न? मलसहित मणि, वापिस दो-दो अक्षर दोनों। पहला मल और यह मणि। मणि रत्न, वह मलसहित होने से एक प्रकार से न होकर अनेक प्रकार से होता है,.. इस मल के विविध प्रकार से उसका सम्बन्ध करने से मणि विविध प्रकार से मलसहित भासित होती है।

वैसे ही... वास्तव में मणि का स्वभाव तो एकरूप भासित होना, वह है परन्तु मल सहित होने से उसके सम्बन्ध में जुड़ने से मणि की एकता की एक प्रकार की अविविधता जो चाहिए, वह दिखायी नहीं देती परन्तु विविधता दिखायी देती है। मलवाली मणि दिखायी देती है। समझ में आया? जैसे स्फटिक, स्फटिक रत्न है, वह स्वच्छ है परन्तु साथ में काले-लाल फूल के डंक के निमित्त के संग में उसमें काली-लाल झाँई विविध प्रकार से संग से दिखायी देती है। वह मणि का, उस स्फटिक की पर्याय का वैसा धर्म उसका है। समझ में आया? मल से नहीं, डंक से नहीं। स्फटिक को लाल डंक से अन्दर

प्रवाह पड़ेगी, वह स्फटिक का स्वभाव है, लड़की के नीचे उसे रखो, वहाँ नहीं पड़ेगा, उसका स्वभाव नहीं। उसके अन्दर प्रवाह नहीं पड़ेगा।

मुमुक्षु : इसकी शक्ति दे न ?

उत्तर : बिल्कुल शक्ति-वक्ति कौन देता होगा ? इससे शक्ति वहाँ जाती होगी ? स्फटिकमणि में लाल फूल के डंक के निमित्त से अभी अन्दर लाल आदि झाँई दिखायी देती है, वह फूल के कारण नहीं, उसकी अपनी योग्यता के कारण दिखायी देती है।

मुमुक्षु : फूल न हो तो दिखायी नहीं देती।

उत्तर : फूल न हो तो उस समय स्वयं की योग्यता नहीं है, परन्तु फूल के कारण यदि होवे तो लकड़ी को रखने से उसमें दिखना चाहिए। अग्नि का और लकड़ी का दृष्टान्त तो बहुत बार देते हैं न ? दियासलाई तीन इंच की इतनी होती है। बीड़ी पीते हैं यहाँ जितना गर्म हो, (उतना) उस ओर तीन इंच में वह गर्म नहीं होता, उस लकड़ी का ऐसा स्वभाव नहीं है। लोहा पाँच हाथ का लम्बा होगा और दो ही अंगुल यदि अग्नि में पड़ा होगा, ऐसा छोर पकड़ना होगा यहाँ तो, यहाँ तक गर्म होगा। वह अग्नि के कारण नहीं, लोहे के वाहक स्वभाव के कारण है, भाई! ठीक है ? गुलाबभाई! यदि अग्नि के कारण हो तो दियासलाई यहाँ सुलगते, यहाँ गर्म होना चाहिए, अग्नि वहाँ भी है। अग्नि को वाहक लेने का लकड़ी का स्वभाव नहीं है। समझ में आया ? अमरचन्दभाई! वरना कोई बीड़ी पी नहीं सकता। आगे तीन आँटे होते हैं और लोहे का पाँच हाथ का सरिया होता है, ऐसा का ऐसा सब सफाई कितनी होती है ! देखा है न ?

मुमुक्षु :

उत्तर : हमने जिन्दगी में कभी पी नहीं, हों ! हमने तो पीनेवालों को देखा है। एक बार दस बारह वर्ष की छोटी उम्र में कोई पीता था, इसलिए कहे - एक फूँक लो न, एक जरा सी फूँक (लो) विद्यालय में पढ़ने जाते थे, एक जरा सी ली और ऐसी लगी, ऐसी और... फिर पूरी जिन्दगी में नहीं। कभी नहीं। कभी नहीं, हों ! परन्तु पीते हों उन्हें देखा है। ऐसे... क्या होगा ? पावर चढ़े तो उसमें बादशाही लगती होगी। एक पारसी कहता था न ? भाई ! रामजीभाई का... पारसी कोई कहता था। शराब पियो, फिर बादशाही दिखती

है। राजकोट का होगा? अमीरी विचार आवे। कोई था वहाँ राजकोट का कोई (था) मूर्ख! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, मलसहित मणि अपनी योग्यता के कारण अर्थात् मल के कारण नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। यह लिखा है, **मलसहित मणि का प्रकाश..** अर्थात् मलसहित कब हुआ? उसमें जुड़ा है, इसलिए। मणि में एकता नहीं दिखती परन्तु विविधता दिखती है। वैसे ही **कर्मसम्बद्ध आत्मा का प्रतिभास भी..** भगवान आत्मा... वह (मणि) मैल के साथ सम्बन्ध (करे), इसी प्रकार कर्म के साथ आत्मा सम्बन्ध करता है, इसलिए उसका ज्ञान और आनन्द का एकरूप नहीं दिखता। उसके सम्बन्ध में विविधता भ्रम और राग-द्वेष आदि की विविधता से दिखता है। समझ में आया?

देखो! यह इष्टोपदेश, पूज्यपादस्वामी (का रचित) है। समझ में आया? उन्हें बहुत लब्धि थी, भगवान के पास गये थे। सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, वहाँ गये थे, वहाँ से आकर यह (शास्त्र) लिखा। वस्तु का स्वभाव ऐसा है, सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं और हम भी उस अनुसार जानते हैं। कहो, समझ में आया?

वैसे ही **कर्मसम्बद्ध..** देखो! **कर्मसम्बद्ध आत्मा का प्रतिभास भी..** सम्बन्ध है न? वह (मणि) मलसहित है तो यहाँ सम्बन्ध है। ऐई... पण्डितजी! भई! हमारे शब्द जरा जोड़ना होवे तो... पहले में मणि मलसहित है, यहाँ कर्मसम्बद्ध है। समझ में आया? उनका सम्बन्ध किया है न? **‘कर्मविद्वात्मविज्ञप्तिस्तथा नैकप्रकारतः’** (संस्कृत टीका में) अन्तिम शब्द है न? विद् अर्थात्? लो, यह विद् अर्थात् पण्डितजी इंकार करते हैं, अर्थात् स्वयं इसके अन्दर मल में मणि जुड़ गया और यहाँ भी कर्म में (आत्मा) जुड़ गया। इस प्रकार जो ज्ञानानन्दस्वरूप मैं हूँ, ऐसा अन्तर न देखकर कर्म के सम्बन्ध में जुड़ा; इसलिए उसे एकरूपता नहीं दिखायी देती। समझ में आया?

कर्मसम्बद्ध आत्मा का प्रतिभास भी एकरूप से न होकर अनेकरूप से होता है। कहो, समझ में आया? दोष तेरा है, ऐसा कहते हैं। इसमें यह ऐसा कहते हैं। तू परपदार्थ का सम्बन्ध करता है। सम्बद्ध असंग पदार्थ पर से भिन्न तू है, तथापि पर के साथ सम्बन्ध करता है, इसलिए तुझमें एकरूपता ज्ञाता-दृष्टा, आनन्द की (दशा) चाहिए, वह दिखती नहीं। शशीभाई! आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : कर्म चिपट जाते हैं ।

उत्तर : चिपटता-विपटता कोई कुछ नहीं, उसकी पर्याय उसमें परिणमती है । चिपटे ऐसा (कुछ नहीं है) कर्म जड़ पदार्थ है, उसकी पर्याय से वह परिणम रहा है, इस पर्याय से यह परिणम रहा है, दोनों का ऐसा, ऐसा सम्बन्ध करता है (और) बीच में विविधता उत्पन्न करता है - ऐसा कहते हैं ।

मुमुक्षु :

उत्तर : न, न, नहीं ।

मुमुक्षु :

उत्तर : नहीं, उसके कारण नहीं, अपनी योग्यता के कारण है । इसीलिए तो कहा न! स्फटिक में, स्फटिक में लाल होने की योग्यता स्वयं की योग्यता है, कहीं फूल के कारण नहीं है । फूल के कारण हो तो इस लकड़ी में फूल रखो तो अन्दर झाँई आना चाहिए । इसकी योग्यता नहीं है, ऐसी लकड़ी में योग्यता नहीं है कि अग्नि को ले ले, खींचे । लोहे में शक्ति है (परन्तु) अग्नि के कारण नहीं । इसी प्रकार कर्म के कारण नहीं, कर्म आत्मा को हनन करे, ऐसा कर्म में स्वभाव नहीं और आत्मा कर्म के कारण घाता जाये, उसके कारण घाता जाये, ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है । स्वयं के कारण घात हो, ऐसा उसका भाव-योग्यता पर्याय में है ।

मुमुक्षु : कर्म कुछ करता ही नहीं ।

उत्तर : क्या करे ? धूल करे, कर्म तो परद्रव्य है ।

मुमुक्षु : भगवान ने कर्म का नाश किसलिए किया ?

उत्तर : उन्होंने कहाँ किया है ? उन्होंने तो विकार का नाश (किया), वह भी स्वभाव की एकाग्रता होने पर । वस्तु के आनन्दकन्द में अन्तर रहने पर विकार की उत्पत्ति नहीं हुई, उसे विकार का नाश किया, ऐसा कहने में आता है और विकार का नाश होने पर कर्म के रजकण उनके कारण नष्ट हुए, वे आत्मा ने नष्ट किये, ऐसा व्यवहार से, उपचार से कहने में आता है । कहो, समझ में आया ? ए... बसन्तलालजी ? क्या करना ? तुम्हारे सम्प्रदाय में यह सब बहुत चलता है ।

अब प्रश्न उठा यहाँ पर किसी का प्रश्न है कि -

अमूर्त आत्मा का मूर्तिमान कर्मों के द्वारा अभिभव कैसे हो सकता है? आत्मा तो अमूर्त है। रंग, गंध, रस, स्पर्शरहित अरूपी चैतन्यघन विज्ञानघन तत्त्व अरूपी है। जिसमें रंग, गंध, रस, स्पर्श, यह जड़ का तो उसमें है नहीं। उसमें मूर्तिमान कर्मों.. कर्म तो मूर्त हैं। रंग, गंध, रस, स्पर्शवाले कर्म हैं, उसे कर्मों के द्वारा अभिभव (पैदा) कैसे हो सकता है? मूर्तिमान कर्मों द्वारा-ऐसे मूर्तिमान जड़ पदार्थ द्वारा अभिभव कैसे उत्पन्न होता है? समझ में आया?

उत्तरस्वरूप आचार्य कहते हैं कि - 'नशा को पैदा करनेवाले कोद्रव-कोदों धान्य को खाकर जिसे नशा पैदा हो गया है,... समझ में आया? नशा पैदा करनेवाले कौदव-धान्य को खा करके जिसे स्वयं नशा पैदा हो गया है... नशा उत्पन्न होने की जिसकी योग्यता है, उसे नशा पैदा करते हैं - ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : नशा पैदा करनेवाले कौदव लिखा है।

उत्तर : करनेवाला अर्थात् करता है, तब करनेवाला है, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? पर क्या करे? पर, परपदार्थ उनके अपने में स्वतन्त्ररूप से स्वयं के स्वचतुष्टय से प्रत्येक पदार्थ परिणमित हो रहा है। स्वचतुष्टय अर्थात्? जो वस्तु है, वह द्रव्य-वस्तु; उसकी त्रिकाली शक्तियाँ, भाव वह उसका गुण; वर्तमान अवस्था-हालत, वह पर्याय और उसका सारा अवगाहन-चौड़ाई, वह क्षेत्र। उसमें प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में अस्ति है; परद्रव्य के क्षेत्र-काल-भाव से प्रत्येक नास्ति है। समझ में आया?

इस अंगुली का यह द्रव्य, इसका क्षेत्र-चौड़ाई, इसकी यह अवस्था इतनी और गुण इसका रंग, गन्ध आदि शक्ति। वह स्वयं में है, वह इस द्वारा नहीं, इस द्वारा नहीं, इसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव इसमें हैं। इसमें इसके नहीं और इसमें इसके नहीं। दोनों भिन्न-भिन्न काम करते हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक रजकण अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अस्ति में रहे हुए, बसे हुए बदलते हैं। दूसरे के कारण कुछ है नहीं; दूसरे, दूसरे के अपने परिणामन और टिकना - काम कर रहे हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु : इसका असर होता है या नहीं ?

उत्तर : यह असर स्वयं मूढ़ होकर मानता है। इसलिए यह कहता है कि मुझे असर है, ऐसा कहता है। कहो, समझ में आया ? इसके लिये तो यह बात लेते हैं, भाई ! तेरा सम्बन्ध तूने छोड़ा है और तूने पर का सम्बन्ध किया है। पर का सम्बन्ध तूने किया, इसलिए तुझसे भूल हुई है। तेरी भूल में अन्य चीज निमित्त कहलाती है। समझ में आया ? भाषा तो चाहे जो हो अन्दर। क्या है अन्तिम 'कैर्मदनकोद्रवैः' इतना है न ? 'यावत् स्वभावमनासादयन्' ऐसा है न ? 'विसदृशान्यवगच्छतीति' बस, ठीक है। कहा न यह ? 'यावत् स्वभावमनासादयन्' अपने स्वभाव को नहीं जानता और 'विसदृश' को अपना मानता है। विपरीत है, अपने से विपरीत है, उसे अपना मानता है। कहो, समझ में आया ?

यहाँ तो मुझे, जिसे नशा पैदा हो गया है, ... इस पर जरा वजन था। जिसे मद उत्पन्न हुआ है। मद किसी को उत्पन्न न होता हो, उसकी बात नहीं है। समझ में आया ? उसके सम्बन्ध में नशा उत्पन्न होता है, उसे उसकी विविधता भाषित होती है। आहा...हा... ! ऐसी बात है परन्तु भूल करे स्वयं और किसी प्रकार भी कर्म में कर्म के कारण भूल हो, ऐसा डालने को अनादि से मथता है। अपने को आप भूलके हैरान हो गया। अपना शुद्ध आनन्दस्वभाव भूलकर, विकार से हैरान हुआ है। यह हैरान गति किसी ने करायी है, ऐसा कहता है (परन्तु) ऐसा है नहीं क्योंकि हैरानपना स्वयं से स्वतन्त्ररूप से करे तो ही हैरानपना स्वतन्त्ररूप से मिटा सकता है। न्याय तो ठीक है न ? समझ में आया ? यदि स्वयं अपराध करे, स्वतन्त्ररूप से अपराध करे तो वह स्वतन्त्ररूप से स्वभाव के आश्रय से अपराध का नाश कर सकता है परन्तु अपराध परपदार्थ करावे तो वह तो होवे तब तक करावे, इसलिए इसे मिटाने का अधिकार नहीं रहता। ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया ?

इसमें / शरीर में रोग हुआ, उसका क्या करना ? वह कर्म के कारण हुआ या नहीं ? ऐसा कहता है यह। शरीर में हुआ परन्तु इसमें इसे क्या हुआ ? वह तो जड़ में है। समझ में आया ? साथ में किसी हरिजन का घर सुलगा, उसमें इसे क्या है घर में ? इसी प्रकार यह किसी का घर यहाँ जड़ में सुलगता है परन्तु कहता है कि मुझे होता है। अब यह मूढ़ता इसकी है या शरीर के कारण है यह ?

मुमुक्षु : मेरापन उत्पन्न क्यों होता है ?

उत्तर : यह उत्पन्न किया इसलिए। कहा न अन्दर ? जिसका अपना स्वभाव जो ज्ञानानन्द है, प्रभु आत्मा ज्ञान-जाननेवाला जिसका लक्षण है, ऐसे स्वभाव को न जानता हुआ राग और पुण्य और शरीर मेरा; जो स्वभाव इसका नहीं ऐसा माना है। इसलिए यह चार गति में भटक रहा है। आहा...हा.... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :

उत्तर :कहाँ था ?देखे ऐसा कि कुछ लगता है। मेरा है, ऐसा वह मानता है ? वह तो मुझे होता है, ऐसा मानता है, सुलगे यहाँ तो कहे मुझे हुआ। यहाँ कोई पैर नहीं चले तो (बोलता है) हम परवश हो गये। भाई ! हम तो पहले स्वतन्त्र थे। तू अर्थात् कौन... ? शरीर की-रजकण की अवस्था उसके कारण नहीं होती थी, तब कहे हम तब स्वतन्त्र थे, अब परतन्त्र हुए। तू परतन्त्र हुआ या वह तो उसकी दशा हुई है ? करता है विपरीत मान्यता और डालता है जड़ के ऊपर। यह दोष कब टलेगा ? और कब दोष इसे समझ में आयेगा ? आहा...हा... !

ऐसा पुरुष घट पट आदि पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान सकता,.. देखो ! जिसे नशा पैदा हो गया... समझ में आया ? वह घट-पट आदि पदार्थों के स्वभाव को नहीं जानता। यह पीलिया नहीं होता ? पीलियावाला सफेद घट को पीला देखता है। दीवार सफेद है, उसे पीली देखता है। वह दीवार के कारण है ? पीलिया के यहाँ पीले रजकण आँख में हैं तो उसे पीला दिखता है, वह स्वयं की ऊँधई के कारण है। इसी प्रकार इसे अपना स्वभाव जाननहार ज्ञानमूर्ति आत्मा (हूँ), ऐसे स्वभाव को न जानकर, राग और परपदार्थ मेरे हैं, ऐसी मान्यता से परपदार्थ को देखता है। उनमें फेरफार होवे तो कहता है ए...ई... ! मुझे फेरफार हो गया। उसमें कुछ अनुकूलता आ गयी तो कहता है मुझे अनुकूलता आ गयी। मूढ़ स्वयं मिथ्यात्वभाव खड़ा करता है।

मुमुक्षु :

उत्तर : यही कहते हैं। यह मेरापन माना। वह नहीं और मेरा माना है, यही इसकी मूढ़ता और महादुःख का कारण है।

मुमुक्षु : यह मेरापन निकालता नहीं ।

उत्तर : परन्तु निकाले कौन ? किया किसने है ? किया है किसने कि निकाले दूसरा ? लोक में कहा जाता है कि 'गोर परणावे पछि घर हल्वीदे ?' लोकों में ऐसा कहा जाता है । अपने कहा जाता है या नहीं ?

ऐसा पुरुष.. नशे में आया हुआ पुरुष । समयसार में एक दृष्टान्त दिया है कि जो पुरुष अरतिभाव में है और उसने कोई शराब पी हो तो उसे चढ़ती नहीं । चढ़ती ही नहीं । न चढ़े परन्तु वह न चढ़े, ऐसी उसकी योग्यता है । उस जीव को प्रीति नहीं, प्रेम नहीं और किसी कारण से किसी ने पिलायी, (उसे) नशा नहीं चढ़ता । ऐसा समयसार में पाठ है । इसी तरह अज्ञानी को भान नहीं है 'मैं कौन हूँ ?' इसलिए कर्म के निमित्त का नशा स्वयं ने ले लिया है । धर्मी को वह नशा नहीं चढ़ता । मैं जाननेवाला हूँ, मैं चैतन्य हूँ, मेरी सत्ता के अस्तित्व में ज्ञान और आनन्द है, मेरा ज्ञान और आनन्द पर की सत्ता में नहीं है । इसलिए पर की सत्ता मुझे सुखरूप हो या परसत्ता मुझे दुःखरूप हो, ऐसा मेरी सत्ता में नहीं और पर में ऐसा नहीं । ऐसा ज्ञानी जानता हुआ, ज्ञान में सन्तोष रखकर आनन्द का वेदन करता है । अज्ञानी, पर के कारण मुझे सुखदायक है, यह मुझे हैरान (करता है), ऐसा मानकर दुःख का वेदन करता है । कहो, समझ में आया ? वह विपरीत मान्यता हो गयी है न ? - 'शरीर से सुखी तो सुखी सर्व बातें' - ऐसी विपरीत मान्यता कर ली है । साहित्यकार.... 'शरीराद्यं खलु धर्म साधनम्' आता है न ? लोगों में व्यवहार है । यह तो इसमें - पुरुषार्थसिद्धियुपाय में आता है । निमित्तरूप से है । शरीर आद्यं खलु... धूल में भी आद्यं नहीं है । यह तो मिट्टी-धूल है । मिट्टी के रजकण हैं, उन्हें पता भी नहीं कि हम कौन तत्त्व हैं ? इसे पता है कि मैं ज्ञान हूँ, वह जड़ है । उन्हें तो पता भी नहीं कि मैं जड़ हूँ और यह साथ में ज्ञान है, उन्हें तो पता भी नहीं ।

जिसके अस्तित्व में - होने में ज्ञान है, वह ज्ञान अपने अस्तित्व को जानता है और जिसके होने में (अस्तित्व में) ज्ञान नहीं, उसे भी यह ज्ञान जानता है कि वह पर है । जिसके - रजकण में होने में (अस्ति में) ज्ञान नहीं, वह अपनी अस्ति को - हयाती को नहीं जानता और साथ में ज्ञानवाला तत्त्व अस्ति-हयाती है, उसे यह नहीं जानता परन्तु कौन जाने, ऐसी विपरीत मान्यता कर डाली है अन्दर से । समझ में आया ?

कर्मबद्ध आत्मा पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान पाता है। अर्थात् आत्मा व उसका ज्ञान गुण यद्यपि अमूर्त है.. भगवान आत्मा और उसका ज्ञानस्वभाव अमूर्त है। फिर भी मूर्तिमान कोद्रवादि धान्यों से मिलकर.. देखो! मिलकर। ऐसा जुड़ गया न अन्दर? वह बिगड़ जाता है। उसकी दशा स्वयं के कारण बिगड़ जाती है। उसी प्रकार अमूर्त आत्मा मूर्तिमान् कर्मों के द्वारा.. ऐसा स्वयं के द्वारा न रहा, फिर पर के द्वारा गिर गया। समझ में आया? अभिभूत हो जाता है.. भगवान आत्मा स्वयं को भूलकर कर्म के रस्ते, उदय के पाक में चढ़ जाता है, घाता जाता है। समझ में आया? और उसके गुण भी दबे जा सकते हैं। गुण अर्थात् पर्याय, हों! अपनी ज्ञातापने की अवस्था की पर्याय है। वह कर्म के लक्ष्य में चढ़ा हुआ जीव अपनी निर्मल पर्याय को भूल जाता है। निर्मल पर्याय होनी चाहिए, (उसे) भूल जाता है और विकार को खड़ा करता है, भ्रम को खड़ा करता है। वह भ्रम चार गति के परिभ्रमण का कारण है। समझ में आया?

शरीर आदिकों के स्वरूप को न समझता हुआ.. शरीर का स्वभाव तो जड़ परमाणु मिट्टी है। आवे-जावे पुद्गल है, रजकण जुड़े और गले। पुद्गल = पुद् (अर्थात्) ये रजकण जुड़े और गलें अर्थात् छूटें, वह तो उनका स्वभाव है। आत्मा तो भिन्न स्वभाव है। शरीर आदि ऐसे, पैसे, स्त्री, कुटुम्ब, लक्ष्मी (आदि)। न समझता हुआ आत्मा शरीरादिकों को किसी दूसरे रूप में ही मान बैठता है। जैसा है, वैसा नहीं मानता परन्तु जो इसका नहीं है, उसे अपना मानता है। यह इसका अपना दोष है।

दोहा - मोहकर्म के उदय से, वस्तुस्वभाव न पात।

मदकारी कोदों भखे, उल्टा जगत लखात॥७॥

मोहकर्म के उदय के पाक में भगवान आत्मा अपना पाक-आनन्द के पाक को भूलकर.. वह तो आनन्द का क्षेत्र है, आनन्द... आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द का क्षेत्र - धाम पूरा स्वभावभाव है। उसे भूलकर इस कर्म के निमित्त में जुड़ने से उस कर्म के उदय से, वस्तुस्वभाव न पात। अपने ज्ञातादृष्टा वस्तुस्वभाव को नहीं मानता; विकारीभाव दुःखरूप है, उसके भाव को वह नहीं जानता। शरीर आदि परपदार्थ स्वयं के कारण परिणमन कर बदलकर टिक रहे हैं - ऐसे उनके स्वभाव को भी यह नहीं जानता। कहो, ठीक है?

कौन जाने कैसा कर्म लगा है, जैन में तो ऐसा हो गया है। उन अन्यमतियों को ईश्वर रोके, ईश्वरकर्ता। इन्हें कर्मकर्ता। उनको चैतन्यकर्ता तो इन्हें जड़कर्ता। नवरंगभाई! किसी प्रकार से भी अज्ञानी मूढ़ को कर्म से आत्मा में कुछ होता है, ऐसा इसे मनवाना है और मानना है। जगत् का कर्ता ईश्वर माने, ईश्वर चैतन्य है। है नहीं कोई, जगत् स्वतन्त्र तत्त्व है। स्वतः सत् हो, उसका कोई कर्ता नहीं हो सकता, तथापि ईश्वर कर्ता माने। यह चैतन्य स्वयं भूल करे और अज्ञानी कहे कर्म मुझे भूल कराते हैं, उसे अचेतन जड़ उसका भगवान (हो गया)। समझ में आया? ईश्वर कर्ता छोड़ दिया और जड़ कर्ता मान लिया। समझ में आया? शशीभाई!

मोहकर्म के उदय से, वस्तुस्वभाव न पात। आत्मा की शान्ति के उदय से अपना स्वभाव और पर का (स्वभाव) जान सकने का इसका स्वभाव है - ऐसा न जानकर, अपनी नजरें स्वसन्मुख न करके, जिस चीज की उपेक्षा करनी चाहिए, उसकी अपेक्षा में जुड़कर अपना और पर का वास्तविक स्वभाव वह (नहीं) जान सकता, पकड़ नहीं सकता। समझ में आया?

मदकारी कोदों भखे, उल्टा जगत लखात। जगत् का जैसा स्वरूप है वह नहीं जान सकता। इसी अर्थ को आगे के श्लोक में स्पष्टरीत्या विवेचित करते हैं- लो!

इसी अर्थ को आगे के श्लोक में स्पष्टरीत्या विवेचित करते हैं-

वपुर्गृहं धनं दाराः पुत्रा मित्राणि शत्रवः।

सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते॥८॥

अर्थ - यद्यपि शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र, शत्रु आदि सब अन्य स्वभाव को लिये हुए पर-अन्य हैं, परन्तु मूढ़ प्राणी मोहनीयकर्म के जाल में फँसकर इन्हें आत्मा के समान मानता है।

विशदार्थ - स्व और पर के विवेकज्ञान से रहित पुरुष शरीर आदिक परपदार्थों को आत्मा व आत्मा के स्वरूप ही समझता रहता है। अर्थात् दृढतम मोह से वश प्राणी देहादिक को (जो कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव लक्षणरूप हरेक प्रकार से आत्म स्वभाव से भिन्न

स्वभाववाले हैं) ही आत्मा मानता है और दृढ़तर मोहवाला प्राणी, उन्हीं व वैसे ही शरीरादिक को आत्मा नहीं, अपितु आत्मा के समान मानता रहता है।

दोहा - पुत्र मित्र घर तन तिया, धन रिपु आदि पदार्थ।
बिल्कुल निज से भिन्न हैं, मानत मूढ़ निजार्थ॥८॥

गाथा - ८ पर प्रवचन

वपुर्गृहं धनं दाराः पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते॥८॥

आहाहा! देखो, इसमें लेंगे। 'दृढतममोहाविष्टो' 'दृढतममोहाविष्टश्च' ऐसा है न अन्दर दो जगह? टीका... टीका...। हम अपने थोड़ी टीका देख लें, अपने को कहाँ ऐसी संस्कृत आती है? परन्तु अन्दर एक शब्द क्या पड़ा होगा? देखो! है न? 'दृढतममोहाविष्ट' अन्तिम से दूसरी लाईन 'दृढतममोहाविष्ट' और तीसरे में बीच में 'दृढतममोहाविष्टश्च' दृढ़ मोह और आयुष्य में पहला, अन्दर में फँस गया। अर्थ में ऐसा है देखो।

मोहनीयकर्म के जाल में फँसकर.. है न यह अर्थ? इसका अर्थ है, भाई! हिन्दी में अर्थ में है। क्या कहते हैं? कि यद्यपि यह शरीर जड़ मिट्टी अजीवतत्त्व प्रत्यक्ष है और दिखता है बहुतों को ऐसे आत्मा चला जाता है और शरीर जला डालते हैं। शरीर और आत्मा एक होवे तो ऐसा नहीं बने। अलग चीज, वह अलग रहे; एक हो वह अलग पड़े नहीं। अलग है, शरीर, मिट्टी अभी भी अत्यन्त भिन्न है, अत्यन्त मुर्दा है यह तो। मृतक कलेवर में अमृतस्वरूप भगवान बिराजता है। समझ में आया? आता है न कर्ताकर्म में? ९६ गाथा, ९६ गाथा में आता है। अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं) इस मृतक कलेवर में अमृत भगवान अ-मृत। यह (शरीर) मृत और यह (आत्मा) अमृत। यह मृतक कलेवर - मुर्दा, मुर्दा, यह अचेतन है। इसमें यह भगवान अमृतस्वरूप चिदानन्द भगवान विराजता है (परन्तु) भान नहीं होता। मृतक कलेवर, यह मेरा, (ऐसा मानता है)।

मुमुक्षु : जीव को इतने शरीर होते हैं।

उत्तर : यह तो निमित्त से कथन होता है न। इसे शरीर कब थे ? सम्बन्ध में कौन है, उसे बतलाते हैं। इतनी पर्याप्ति होती है और इतने शरीर होते हैं और इसे आठ कर्म होते हैं और आठ कर्मवाला जीव। आठ कर्मवाला जीव अर्थात् ? यह तो निमित्त का ज्ञान है। अनन्त गुणोंवाला जीव, यह वास्तविक है। समझ में आया ? वह तो व्यवहार से सम्बन्ध किसका है ? सम्बन्ध में व्यवहाररूप से कौन है ? उसका ज्ञान कराते हैं। समझ में आया इसमें ? आहा...हा... !

जगत को कर्म ने हैरान किया, यह बहुत अच्छा लगता है इसे... यह स्वयं निर्दोष ठहरे। टोडरमलजी कहते हैं, तू तो महन्त रहना चाहता है और जहाँ-तहाँ तू कर्म का दोष निकालता है, यदि जैन नीति को माने, वीतराग की नीति को माने तो हराम को दोष तू कैसे मान सकता है ? ऐसी अनीति नहीं हो सकती। टोडरमलजी कहते हैं। जहाँ-तहाँ मूढ़ ने (मेरापन मान रखा है) समझ में आया ? लिखा है तुमने ? ३१३ (पृष्ठ) देखो ! कहते हैं 'तत्त्वनिर्णय करने में किसी कर्म का तो दोष है नहीं परन्तु तेरा ही दोष है; तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है' यह दोष तो कर्म के कारण होता है, कर्म के कारण होता है... बापू ! मोहकर्म का उदय हो तो मिथ्यात्व होता है, चारित्र का उदय हो तो राग होता है... मूढ़ है... मिथ्यादृष्टि की मूढ़ता कहीं...

'तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपना दोष कर्मादिक को लगाता है' दोष तू करे और कर्म में लगावे, कर्म का उदय आया, इसलिए हमारे हुआ, मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि-पापी है, वीतराग की आज्ञा को नहीं मानता। 'परन्तु जिन आज्ञा माने...' देखो ! जिन आज्ञा तो ऐसी है कि कर्म के कारण दोष है नहीं; तेरे कारण दोष है-ऐसी जिन आज्ञा है।

मुमुक्षु : ज्यादा दोष करता है।

उत्तर : यह तो दुनिया में कहते हैं। ज्यादा दोष करता नहीं क्या, दुनिया तो स्वयं दोष करती है।

'परन्तु स्वयं तो जिन आज्ञा माने...' इसका अर्थ क्या है ? 'तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं'। ऐसी अनीति करता है ? दोष तू करे और कर्म मुझे कराता है, कर्म के कारण दोष है, ऐसा तू अन्याय करता है। वीतराग की आज्ञा का शत्रु, क्रोधी है, क्रोध करनेवाला। आज्ञा

पर तू अनीति करता है। बसन्तलालजी ! जहाँ-तहाँ मूढ़ ऐसा मानता है। दर्शनमोह के उदय से आत्मा को मिथ्यात्व होता है। यह तो निमित्त का कथन है। तू करे, तब उसे निमित्त कहा जाता है। धूल में भी कोई कराता नहीं... ! महामिथ्यात्व की मूढ़ता है और फिर मानता है कि हम धर्मी हैं। धर्मी कहाँ से लाया ?

जैन संस्कृति के अभ्यासी। जैन संस्कृति तो, राग मेरा ऐसा दोष माने, जाने तो राग को स्वभाव की दृष्टि से मिटा सके परन्तु राग और विकार पर करावे तो किसके आश्रय से उसे मिटाना ? समझ में आया ? जो करावे, उसका आश्रय लेना मिटाने के लिये ? क्या करना क्या ? स्वयं पर का आश्रय लेकर दोष करे तो स्वयं स्व का आश्रय लेकर दोष मिटावे। सिद्धान्त का न्याय समझना पड़ेगा या नहीं ? गुलाबभाई !

‘तुझे विषय-कषायी रहना है, इसलिए ऐसा झूठ बोलता है। तुझे मोक्ष की सच्ची अभिलाषा..’ देखो ! छूटने की अभिलाषा हो तो बंधा हुआ अपने से हूँ, ऐसा निर्णय करना चाहिए। यदि सच्ची मोक्ष की-छूटने की अभिलाषा हो तो, मैं छूटने का इच्छुक हूँ तो इसका अर्थ कि मैं ही स्वयं मुझसे बँधा हुआ हूँ तो छूटने का इच्छुक कहलाता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : बहुत जवाबदारी डाली।

उत्तर : बहुत जवाबदारी डाली सिर पर। यह तो समझकर बोलते हैं।

मुमुक्षु : छूटने का इच्छुक तब कहलाये कि.....

उत्तर : तब कहलाये कि मैं स्वयं मेरे भाव से बँधा हुआ हूँ तो उसे छूटने का अभिलाषी यथार्थतः (कहा जाता है)। ठीक है, समझ में आया ? बँधावे पर और छूटने का अभिलाषी स्वयं हो - दोनों का मिलान कहाँ खायेगा ? बहुत अच्छी बात ली है।

मुमुक्षु :

उत्तर : छुड़ावे, हो गया, तुझे तो कुछ करना नहीं, तू तो धुली हुई मूली जैसा अलग महन्त रहे।

‘इसलिए ऐसी युक्ति किसलिए बनाता है ?’ संसार के कार्यों में अपने पुरुषार्थ से सिद्धि होती न जाने तो भी वहाँ पुरुषार्थ द्वारा उद्यम किया करता है, यहाँ पुरुषार्थ गुमा बैठा,

इससे ऐसा ज्ञात होता है कि मोक्ष को देखादेखी... 'छूटने का अभिलाषी हो तो मैं मुझसे बँधा हुआ हूँ, ऐसा तुझे निर्णय होना चाहिए। समझ में आया ? बहुत बात ली है। टोडरमलजी ने तो इतनी बात ली है परन्तु उसे कौन समझे ? किसी को फुर्सत नहीं होती निवृत्ति की।

क्या कहते हैं ? देखो ! ८ वीं (गाथा) का अर्थ – यद्यपि शरीर,.. अन्य स्वभाव को लेकर है। क्या कहते हैं ? पहले अन्तिम शब्द लेना यद्यपि शरीर, सब अन्य स्वभाव को लिये हुए पर-अन्य हैं,.. ऐसा लेना। है न अन्तिम शब्द। इसी-इसी में पहली लाइन। यद्यपि यह शरीर अन्य स्वभाव के कारण, जड़ स्वभाव के कारण शरीर है। इसलिए पर / अन्य है। इस जड़स्वभाव को लेकर शरीर है, आत्मा को लेकर नहीं। है या नहीं इसमें शब्द ? यद्यपि शरीर, सब अन्य स्वभाव को लिये हुए पर-अन्य हैं,.. समझ में आया ? यहाँ से शुरु किया है न स्वयं ? अन्य स्वभाव को लिये हुए पर-अन्य हैं,.. क्या कहा ? शरीर का तो जड़ अचेतनस्वभाव, अन्य स्वभाव है। अचेतनस्वभाव है, तेरा तो चेतनस्वभाव है। वह अचेतनस्वभाव पर है। वह पर और उसकी क्रिया, उसकी दशा होने पर 'मुझे होता है' और उसकी क्रिया और दशा होने पर 'मैं उसे करता हूँ'; अन्य स्वभावी चीज को, मुझसे यह होती है; अन्य स्वभावी चीज को, मुझे सुखरूप होती है (ऐसी) मान्यता मूढ़ है। समझ में आया ?

अन्य स्वभाव को लिये.. समझे न ? क्या तुम्हारी भाषा है ? अन्य स्वभाव को लिये.. अर्थात् अन्य स्वभाव के कारण। अन्य स्वभाव को लिये अर्थात् अन्य स्वभाव के कारण वह जड़ है। तेरे स्वभाव के कारण उसमें शरीर में बिल्कुल नहीं। मिट्टी धूल है। उसके स्वभाव से उसमें रोग है, उसके स्वभाव से उसमें निरोगता, उसके स्वभाव से उसका चलना, उसके स्वभाव से उसका रुकना, उसके स्वभाव के कारण वह अचेतन है।

परन्तु मूढ़ प्राणी मोहनीयकर्म के जाल में फँसकर.. देखो ! मोह में फँसकर, आत्मा में रहकर नहीं। इन्हें आत्मा के समान मानता है। शरीर को ठीक होवे न, तो अपने को ठीक पड़े। मूढ़ ! दोनों को एक मानता है। उसे ठीक होवे तो मुझे ठीक, इसका अर्थ दोनों एक हैं। उसमें अनुकूलता न होवे तो मुझे अनुकूलता नहीं, इसका अर्थ हुआ कि दोनों को एक माना है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : बहुत कठिन पड़ता है ।

उत्तर : कठिन पड़ता है । कहते हैं पागल हो गया है, पागल ? जो चीज अन्य स्वभाववाली है, तेरे स्वभाववाली नहीं, दूसरी भाषा से लो । जो जड़ अन्य स्वभाववाला स्वरूप है, तेरे स्वभावस्वरूप वह नहीं, उसे तू, मुझे सुख-दुःख का कारण वह होता है, और उसके कारण मुझे सुख-दुःख है अथवा वे मेरे हैं, यह तो तेरी मूढ़ता है । समझ में आया ? यह बहुत कठिन पड़ता है, हों ! कहते हैं कि बापू ! शरीर और आत्मा के बीच तो स्वभावभेद है । शरीर और आत्मा के बीच स्वभावभेद है और तू ऐसा माने कि हम दोनों एक हैं, मूढ़ है । यह तेरी मूढ़ता तुझे दुःख का कारण है ।

इसी तरह घर... घर... यह बँगला - पाँच लाख का बड़ा बँगला हुआ हो, पचास हजार का बनाया हो । खिड़की-दरवाजे ऐसे ठीक से श्रृंगार कर... क्या कहलाता है ? पॉलिश । नानचन्दभाई ! पॉलिश-वॉलिश (किया हो) । नानचन्दभाई के घर में देखो, सब पॉलिश हो दादरा-बादरा... एक बार देखा था । ऐसा भी परन्तु उसमें से निकलना कठिन पड़े, हों ! एक इनका घर और एक उसका घर... छबीलभाई का, राजकोट... छबील के पिता का क्या नाम, विलासभाई । हमारे तो बहुत देखने का होता है न ! वहाँ सब ऐसी-ऐसी लकड़ियाँ साफ, दादरा साफ, पॉलिश... सब पॉलिश-पॉलिश और ऐसे गोल चक्कर लकड़ी के बैठने के रखे हों न ! कुर्सी के ऊपर बैठे उसे गोल... क्या कहते हैं उसे ? टेबल । उसमें कपड़ा ऐसा लटकता (हो), ऐसा लटकता हो, उसमें ऊपर वह होता है न... आहा..हा... ! उसमें से निकलना लोगों को कठिन पड़ेगा ।

मुमुक्षु : नानचन्दभाई के घर में देखो तो ऐसा हो तो हिम्मतभाई के घर में देखो तो क्या होगा ?

उत्तर : उनके घर में उतरे थे । हमने तो वह घर देखा है । धूल में भी नहीं, आहाहा ! उसमें शरीर को ऐसा मानो हमने रखा है, ऐसा मानते हैं न ! साबुन से धोते हैं, सबेरे टाईम-टेबिल... चाय, रोटी, दाल, भात, शाक, कढ़ी, खिचड़ी, पापड़, खेरा, खेरिया, खेरा आता है न ? खेरा, क्या कहलाता है ? वह पापड़ । ऐसा पापड़ घी में तला हुआ पापड़, यह अभी होता है । ऐसा बहुत होता है... उसमें से इस शरीर को पोषण किया हो, ऐसा माना हो, माना

हो, हों! आहाहा..! अरे..रे! यह शरीर, अरे...रे! यह शरीर... क्या धूल परन्तु यह तो अन्य स्वभाववाली चीज है, अन्य स्वभाववाली चीज है। तेरे स्वभाववाली चीज यह कहाँ थी? समझ में आया? आहाहा!

देखो न! इस राजकोट में सोमचन्दभाई के लड़के की बहू... सोमचन्द खारा... छोटी उम्र ३९ वर्ष की थी। चार वर्ष से यहाँ से पक्षघात (लकवा) हुआ। कभी हजारों में किसी को होता होगा ऐसा। इतना यहाँ से पक्षघात। यहाँ से, यहाँ से, हों! पेशाब एक ओर नली में चला जाये, एक ओर विष्टा चली जाये। उसे पूछो, देखो तो मुँह पर कोई दिन खेद नहीं। बहिन कैसे हो? आत्मा का कहो, आत्मा का कहो, बस! मुझे ठीक है। कैसे हो? एक ही बात, भाई! बीच में आता है न? ऐसे दो, चार, पाँच दिन में वहाँ जाते हैं, साथ में रास्ता है न! रामजीभाई को उस ओर है न? परन्तु बाई को ऐसा (हुआ) कौन जाने युवा महिला, फिर भी उसके मुँह में साढ़े चार, चार वर्ष से ऐसा... तीन-तीन घण्टे लड़के की तरह फिरावे... वरना कीड़े पड़ जायें। उसे कुछ नहीं, सुनने का भाव अवश्य। कुछ लिखाया था... छपाकर ऐसे सामने लेख रखा था। उसमें लिखा था, वह पढ़ा करे, बस! पढ़ा कर, विचारे। यह होली सुलगी उसमें उसे कहाँ बुझाने जाये। वह तो अन्य स्वभावी चीज है। जेचन्दभाई! यह स्त्री का जीव और यह आदमी का जीव।

कहते हैं कि अभी तो भान नहीं, तथापि इस प्रकार की दरकार कम की हो, अब क्या हुआ? होवे तो हो। तीन-तीन घण्टे लड़के और पति शरीर को घुमाते हैं, हों! इतना (चल) सके नहीं। स्वयं आप न कर सके, तीन घण्टे न फिरावे तो यहाँ सब कीड़ें पड़ें। क्या करना? वह तो अन्य स्वभावी चीज है तो उसमें वह होकर खड़ा रहेगा। तुझे क्या करना है उसमें? अन्य स्वभाववाली अन्य वस्तु, अन्य गुणवाली, अन्य पर्यायवाली, उसे तेरे अन्य गुण और अन्य पर्याय में तुझे क्या करना है? और उसे क्या तुझे मानना है? आहाहा! आहाहा!

मुमुक्षु :

उत्तर : वह पण्डित तो ऐसा कहता है कि नहीं और व्यर्थ में मानता है, इसलिए दुःखी होता है। मोहनीयकर्म के जाल में फँसकर.. ऐसा तो कहते हैं। जाल में फँसकर

अन्य स्वभाववाले को यह मेरा मानता है। आत्मा के समान मानता है। ऐसा कहा न? उसका अर्थ समान (मानता है)। मैं ऐसा यह, ऐसा। मैं आत्मा हूँ, ऐसा शरीर है, समान मानता है। इसलिए हुआ है न! इन्हें आत्मा के समान मानता है। ऐसा है। समझ में आया? 'स्वानि प्रपद्यते' ऐसा है न? है न, देखो न, मूल में है न! 'मूढः स्वानि प्रपद्यते' 'सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते' पाठ ही ऐसा है। बहुत सरस बात ली है।

मुमुक्षु : अपने जैसा भी नहीं, स्वयं ही।

उत्तर : स्वयं यह तो मैं ही.. यहाँ तो सब समान अर्थात् सरीखे। मैं और ये दोनों समान ही हैं। उसमें फिर भिन्नता क्या? आहा...हा...! वह जाति अलग, भाई! तेरी जाति अलग (है) न, भगवान! तू चैतन्य आनन्द का नाथ सनाथ है न! ये सब जड़ स्वभाव के सनाथ हैं। उसमें जड़स्वभाव सहित हैं। सनाथ हैं अर्थात् सहित हैं। तू चैतन्य ज्ञान आनन्द का सनाथ है अर्थात् सहित है। ये दोनों समान किस प्रकार होंगे? समझ में आया? ये मेरे किस प्रकार तू मान सकेगा? आहाहा!

इसी प्रकार घर,.. घर... घर... घर की बात। वह खस की फैशन। घर में कराया हो। दस-दस लाख के बंगले। गोवा में है न? कैसे? खुशालदास, शान्तिलाल खुशालदास अपने प्रेमचन्दभाई के मामा का लड़का है। दस-दस लाख के दो बड़े बंगले। चालीस करोड़ का आसामी, अपना दशाश्रीमाली। गोवा, गोवा है न? मार डाले किन्तु, हों! आहा...हा...! जाये उसके घर में तो आलू की सब्जी दी, आलू की सब्जी। उनके बहनोई गये थे, यह कहे - हम यह नहीं खाते हैं। (उन्होंने पूछा) क्यों इसमें जीव गिर गये हैं? अरे.. अरे..! मार डाले न! मद कैसा! आहा...हा...! भाई! वह चीज पर है, प्रभु! परस्वभावी, परगुणवाली, परपर्यायवाली, परकार्यवाली, बापू! उसे अपना मानना अर्थात् दोनों एक होकर मानना, इसका अर्थ कि दोनों समान हैं, ऐसा मानना, वह मूढ़ (मोहनीय की) जाल में फँसा हुआ मानता है। आहा...हा...! समझ में आया?

इसी प्रकार धन,.. धन को... लक्ष्मी। पाँच-दस लाख की पूँजी (होवे तो) बापू! हम ऐसे ये! धन होवे तो प्राण रहे, वरना प्राण न रहे। धूल भी हो, धन अन्य स्वभाववाला, घर अन्य स्वभाववाला, धन अन्य स्वभाववाला, उसे अपना माने कि यह लक्ष्मी आवे तो

ठीक चले, बापू! वरना प्राण चले जायें। मूढ़ है। लक्ष्मी ग्यारहवाँ प्राण... अज्ञानी परस्वभाववाली चीज को, मोहजाल में फँसा हुआ मूढ़ उस पर को अपना मानता है और मानकर मिथ्यात्व सेवन कर दुःखी हो रहा है। इसलिए तेरा (अपना) मानना छोड़ दे, इसके लिये बात करते हैं। विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)